RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-03
March-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

शांकर-वेदांत में भक्ति

डॉ.राज नारायण व्यास

दर्शन शास्त्र विभाग, राज. डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

शाकर वेदान्त में भक्ति भक्ति शब्द संस्कृत के 'भज' धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाकर बनाया गया है जिसका अर्थ है भगवान की सेवा करना।" महर्षि शांडिल्य ईश्वर में परानुरक्ति अर्थात् अपूर्व एवं प्रकृष्ट अनुराग रखने को ही भक्ति कहते हैं। नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भगवान के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। यह अमृत स्वरूप भी है।

अपने समस्त कर्मों को भगवान को समर्पित करना ओर किंचित विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। महर्षि नारद की दृष्टि में भक्ति के लिये अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है क्योंकि वह स्वयं प्रमाण रूपा है। वह शान्ति रूपा और परमानन्द रूपा है* ब्रह्मसूत्र के 'आवृतिरकृदुपदेशात्' सूत्र की व्याख्या करते हुए श्री शंकराचार्य जी कहते हैं कि परमेश्वर की निरन्तर उत्कंठा युक्त स्मृति ही भक्ति है।

श्रीमद भागवत के अनुसार सांसारिक विषयों का ज्ञान देने वाली इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्तियों का निष्काम रूप में भगवान में लग जाना ही भक्ति है। " अथातो ब्रह्म जिज्ञासा सूत्र की व्याख्या करते हुए विशिष्टा द्वैतवादी श्री रामानुजाचार्य भी अद्वैतवादी श्री शंकराचार्य की भांति परमात्मा की निरन्तर स्मृति को ही भक्ति मानते हैं। 50

श्री शंकराचार्य जी ने भी ब्रह्मसूत्र भाष्य में तथा अन्यत्र भी उपासना को ज्ञान की प्राप्ति के लिये बहुत ऊँचा स्थान दिया है। दर्शनों का चरम लक्ष्य तो आत्म साक्षात्कार ही है। इसकी प्राप्ति के लिये अभिमान का नाश होना परम आवश्यक है। भगवान ने अर्जुन को तत्व ज्ञान का उपदेश दिया और अर्जुन का मोह दूर हो गया। यही तो अहंकार की पराजय तथा पराभक्ति की महिमा है। इसके बिना दर्शनों के क्षेत्र में परम तत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि श्रद्धा भी तो भक्ति का ही एक स्वरूप है।

भक्तिवाद के न होने पर अद्वैतवाद में जीव के जीवन की कोई सार्थकता नहीं रह जाती। अद्वैत का आस्वादन पहले न होने पर भक्तिवाद की आधार भूमि गिर जाती है और दह आकाश की अवास्तविक कल्पना मात्र बनकर रह जाता है और अद्वैत वादहीन भक्तिवाद भी अन्त तक भाव विलासी के भक्तिवाद में परिणत हो जाता है। अत यह कहना अयुक्ति संगत न होगा कि भक्तिवाद और अद्वैतवाद दोनों ही परस्पर परिपूरक है।
श्री शंकराचार्य का यह डिंडिमघोष है कि स्वस्वरूपानुसन्धान ही भक्ति है। इसी को पचभक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। देवादि विषायक भक्ति अपरा भक्ति कहलाती है। शंकर वेदात की दृष्टि में स्वस्वरूपानुसंधान रूपा भक्ति ही एक मात्र परम सत् की प्राप्ति का साधन है।

आचार्य शंकर की दृष्टि में दृढनिष्ठ तत्ववेत्ता वही है जो सर्वत्र आत्मदर्शन करता है। उसे मैं और मेरा' तू और तेरा कही भी दृष्टिगोचर नहीं होता। यही कारण है कि शंकराचार्य ने देवी विष्णु गंगा आदि के सुन्दर स्तोत्रों मे एकातम प्रत्यय निष्ठा का ही गान किया उन्होंने आत्मतिरिक्त किसी भी देवता अथवा चराचर पदार्थों में प्रत्यय कदापि नहीं किया। सर्वत्र आत्मदर्शन ही उनकी एकतान निष्ठा थी । शंकराचार्य ने इस भावना को ही भक्ति का परम प्रयोजन एवं परम सत् की प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। उसकी • दृष्टि में माता, पिता और गुरुदेव के चरण कमलों में पूर्ण निष्ठा होना भक्ति साधना की प्रथम सीढ़ी है। इन गुरुजनों की कृपा से ही भक्ति की सर्वोच्चता (परम सत्य) की प्राप्ति की जा सकती है। यथा -

"जिसके प्रसाद से मैं ही साक्षात् विष्णु हूँ तथा मुझमें ही समस्त विश्व परिकल्पित है यह अनुभूति मुझको ही रही उन गुरुदेव के नित्य आत्मस्वरूप चरण-कमलों में मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।"

शंकर वेदान्तानुसार भक्ति ज्ञान की पूर्वावस्था है अथवा भक्ति ही आगे चलकर ज्ञान में रूपान्तरित होती है। श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में भक्ति किये बिना अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती और मन शुद्धि हुए बिना ज्ञान का अविर्भाव अथवा स्थायित्व असम्भव है। 5

मुक्ति के जितने भी हेतु हैं, उन सभी में शंकराचार्य ने भक्ति को ही श्रेष्ठ कहा है। कासार की अनित्यता और आत्मस्वरूप शिवत्व को ही उन्होंने अहर्निश ध्येय वस्तु कहा है। जिससे श्री कृष्ण प्रसन्न हो उसे ही विहित कर्म स्वीकार किया है। और संसार के आस्था खना नहीं माना, 7.

भक्त को आत्मत्व की विकासिका या परिपूरिका कहा है। परमसत् की प्राप्ति का एकमात्र सावन उनकी दृष्टि में भक्ति ही है। वैराग्य और आत्मज्ञान के साथ भक्ति की सर्वोच्चता उनके जीवन में आचरण में सर्वत्र ही भक्ति का प्रभाव देखने में आता है। उन्होने कराचार्य स्वीकार करते है।
अद्वैत वेदान्तानुसार माया ही ईश्वर तथा जीव दोनों को ब्रह्म से पृथक पदार्थ बनाती 171 है। विद्यारण्य स्वामी के अनुसार ईश्वर और जीव दोनों ही माया रूपी कामधेनु के दो बछड़े है। वे स्वच्छानुसार द्वैत का आस्वादन भले ही करें, किन्तु तत्व अद्वैत ही होता है।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

अद्वैत, दर्शन के ज्ञान क्षेत्र की चरमता का परिचायक है। अद्वैतवाद के प्रतिस्थापक होने से शंकराचार्य ज्ञानवादी तो थे ही, परन्तु इसके साथ ही वे मूर्तिमान ज्ञान, कर्म और भक्ति के समुच्चयवादी भी थे।

भक्ति ज्ञान की पूर्वावस्था है अथवा यों भी कहा जा सकता है कि भक्ति ही आगे चलकर ज्ञान में रूपांतरित हो जाती है। श्री कृष्ण के चरण कमलों में भक्ति किए बिना अन्तरात्मा की अर्थात् मन की शुद्धि नहीं होती और मन की शुद्धि हुए बिना ज्ञान का आविर्भाव या स्थायित्व असम्भव है।

भक्ति के जयगान में शंकराचार्य की मणिरत्नमाला का अन्यतम रत्न है 'भक्ति' आत्म जिज्ञासा के बहाने जनता को उपदेश देते समय केवल शिव, विष्णु भक्ति को प्रिय बनाने के लिए ही उन्होंने उपदेश नहीं दिया वरन् अपने अनुभूत सत्य को भी प्रकट कर दिया।

अहर्निश ध्येय वस्तु क्या है? संसार का अनित्यता और आत्मस्वरूप शिवत्व कर्म किसे कहते है जिससे श्री कृष्ण प्रसन्न हो किसके प्रति आस्था रखना उचित नहीं। भव सागर के प्रति

श्री कृष्ण प्रीति के द्वारा मनुष्य को सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य इन चारों से मुक्ति, की प्राप्ति होती है। इस बात का समर्थन भी शंकर ने किया है। 2

भक्ति के प्रयोजन और फल आदि कहकर भी शंकराचार्य तृप्त न हो सके किंवा यह विधान कर कि आगे चलकर पंडित लोग अनेक प्रकार की व्याख्या कर डालेंगे, उन्होंने भक्ति की संज्ञा भी निर्धारित कर दी है, साथ ही उन्होंने भक्ति का श्रेष्ठतम स्थापन करने भी प्रयास किया है।

मुक्ति के जितने हेतु हैं, उनमें भक्ति ही श्रेष्ठ है। विद्वान लोग कहते हैं कि रुका अनुसंधान ही भक्ति है।

काला कि भक्ति की यह संज्ञा सर्वसाधारण की अनुभूति का विषय नहीं बन सकती, अतः शंकराचार्य ने भक्ति संबंधी अपनी चरम मान्यता का उद्घोष करके यह निष्कर्ष उन्होंने अपनी अन्य मान्यता का भी उदघोष कर दिया। "
जीवात्मा और ईश्वर का तत्वानुसंधान ही भक्ति है। शंकराचार्य के जीवन में आचरण सर्वत्र ही भक्ति का प्रभाव देखने में आता है। भक्ति आत्मतत्व की विकासिका या परिपूरिका है। इस प्रकार की घोषणा उन्होंने अपने उपदेश में प्रायः सर्वत्र समान ही रूप से की है।

इस प्रकार शंकराचार्य भक्ति का ईश्वर (सगुण ब्रह्म) से घनिष्ठ संबंध मानते हैं। भक्ति की परिपूर्णता ईश्वर के प्रति अनन्य भाव से आत्म समपर्ण में ही है। भक्ति से ईश्वर कृपा सहज ही उपलब्ध हो जाती है, इस बात की घोषणा भी आचार्य शंकर ने की है।

शंकर जब जिस देवता की वंदना करते हैं, तो यह जान पड़ता है कि वे उसी के परम भक्त है। इतना ही नहीं वे जब जहां जिसके विषय में विचार करते हैं, तब वहां उसी यात विशेष के समर्थक जान पड़ते हैं। श्रीकृष्ण की भक्ति भावना निरत शंकराचार्य कहते है।

" जिसके ध्यान बिना जीव शूकर आदि पशु योनियों को प्राप्त होता है, जिसको जाने बिना प्राणी जन्म मरण के (विशाल) भय स्थल को प्राप्त होता है तथा जिसके शरण बिना सैकड़ों (कुत्सित) कीट योनियों को प्राप्त होता है, वे परम समर्थ, शरणदाता लोकेश्वर श्रीकृष्ण (ईश्वर) मुझे अपना दर्शन दें। 56

उपर्युक्त छंद में श्रीकृष्ण का सगुण साकार (ईश्वर) रूप में वर्णन किया गया है। एक जगह गंगा की भक्ति में रत शंकराचार्य गंगा की वंदना करते हुए कहते हैं -

"हे, अलकापुरी में विहार करने वाली परमानन्द मयी, हे दीन दुःखियों की शरण यात्री एवं नमनीया गंगा देवी। तुम मुझपर कृपा करो माँ तुम्हारे तट पर जो निवास करता है, उसका वैकुण्ठ में निवास निश्चित है। -07

शंकराचार्य की दृष्टि में विश्व में केवल एक ही सत्य वस्तु है और वह है ब्रह्म। सम्पूर्ण देव उन्हीं की अभिव्यक्तियाँ हैं। शंकर ने स्त्रोतों के रूप में अनेक उत्कृष्ट पद्य समूहों का प्रणयन करके भक्ति-साहित्य को समृद्ध बनाया है। उनमें से कुछ स्त्रोत भाव के स्तोत्रों के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में 'शिवा नन्द लहरी एवं "सौन्दर्य लहरी के नाम लिये भी उक्तियों की दृष्टि से श्रेष्ठ है, तो कुछ शुद्ध बौद्धिक भक्ति की दृष्टि से। प्रथम प्रकार जो सकते हैं तथा दूसरे प्रकार के उदाहरणों में 'हरिमीडे' और 'दक्षिणा मूर्ति स्तोत्र की। जितने भी देवताओं को हम लोग सामान्यतया जानते हैं उन सबका ध्यान तथा उनकी प्रार्थना उन्होंने की है। यहां तक कि गंगा, यमुना आदि नदियों को भी उन्होंने तीव्र भाव से पुकारा है।

एक बात विशेष रूप से दृष्टव्य है कि शंकराचार्य ने जिस किसी भी देवता की वंदना की है उसे परम पुरुष, परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। यही कारण है कि हम उनको नाम तथा रूप की अपेक्षा तत्व पर अधिक ध्यान देते हुए पाते है। चाहे शिव, विष्णु, दुर्गा गणेश या अन्य कोई देवता हो, उसकी प्रार्थना का लक्ष्य है-सर्वव्यापी आत्म। यथा-

जिनको लोग एक, अक्षर, निर्मल, निर्विकल्प, गुणातीत, निराकार आनन्द, परम पुरुष प्रणव और वेद गर्भ कहते हैं, उन प्रकृष्ट एव पुराण पुरुष की मैं अभ्यर्थना करता हूँ।58 अतएव अद्वैत वेदान्त मे भक्ति, ईश्वर और ब्रह्म का सम्बन्ध उपर्युक्त विवरणानुसार ही समझा जाता है।

अद्वैत वेदान्त में वर्णित भक्ति केवल भावुकता के ढंग की नहीं है, जो मिथ्या विश्वास से प्रेरित किंवा निरी स्वार्थ मूलार्थ होती है। वस्तुतः वह ज्ञान के द्वारा परिमार्जित एवं सुसंस्कृत होती है- भक्ति भावना की चरम परिणति इसी में निहित है। अद्वैत वेदान्त एवं भक्ति मार्ग में मौलिक भेद यह है कि जहां अद्वैत में किसी प्रकार का भेद अथवा मानात्व कथमपि शेष नहीं रहता सब कुछ चिन्मात्र निर्विशेष ब्रह्म हो जाता है वहीं भक्ति मार्ग में द्वैत भावना का अवशेष परम आवश्यक है क्योंकि भक्ति एक भाव विशेष है, और किसी प्रकार का भाव आलम्बन के बिना नहीं हो सकता एवं आलम्बन सदैव आश्रय अर्थात् ध्याता से पृथक ही हुआ करता है। आचार्य शंकर की शिष्य परम्परा में ही अद्वैत मत के एक अन्य आचार्य

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

मधुसुदन सरस्वती ने भगवद् भक्ति रसायन ग्रन्थ में भक्ति को पुरुषार्थ स्वीकार किया है जैसे धर्म, अर्थ आदि चार प्रकार के पुरुषार्थ व्यावहारिक जगत में प्रसिद्ध है उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भक्ति को परम पुरुषार्थ माना है। मधुसुदन जी की इस मान्यता का आधार यही है कि उपासक द्वारा अपने से भिन्न किसी सर्वोत्कृष्ट शक्ति की स्वीकृति ही अपने में एक बड़ा पुरुषार्थ है।

आचार्य शंकर के मतानुसार भक्ति के बिना भगवत्साक्षात्कार असम्भव है। वे कहते एक मात्र भक्ति के द्वारा प्राप्त होती है। उनकी इसी कृपा से शुकदेवादि संग रहित होकर है कि - "भव बंधन से छुड़ाने वाली उनकी कृपा है, जो अनेक जन्मों के साधनों के बाद बदन से मुक्त हो सके।"

श्री भक्ति के विषय से विचार करते हैं, वे भक्ति को दो श्रेणियों में विभाजित करते है, जैसे-पहले स्थूल भक्ति होती है और फिर बाद में सूक्ष्म भक्ति का उदय होता है. यदि हम ईश्वर की सत्ता में तथा उनके द्वारा प्रचारित नियमों में विश्वास रखने का दम भरते हैं, पर यदि हम उनके नियमों का पालन नहीं करते तो हमारा भक्त कहलाना केवल दम्भ ही है। इसलिये शंकराचार्य के मतानुसार सच्चा भक्त बनने के लिये जो साधन पथ है, उसमें पहली बात है ईश्वर के नियमों का निर्विवाद पालन करना।

स्थूल 1 भक्ति के अंगों को गिनते हुए पहली सीढ़ी वे इसी को बताते है कि अपने वर्गाश्रम धर्मो का अनुष्ठान नित्य भगवान श्री कृष्णचन्द की प्रतिमा का उत्साहपूर्वक विविध सामग्रियों से पूजन और निरन्तर हरिदासों का संग करना, भगवतकथाओं के सुनने में अत्यंत उत्साह रखना, सत्य भाषण करना पर स्त्री, परधन और पर निन्दा से सदा दूर रहना, अश्लील चर्चा से घृणा करना, पवित्र तीर्थस्थानों में जाते रहना तथा भगवतकथा श्रवणादि के बिना आयु यों ही बीत गयी इस बात की चिन्ता करना, ये सब भक्ति के क्षण है।" जैसे स्थूल नाम से ही व्यक्त होता है। उपयुक्त साधन प्रणाली साधक के श्रद्धा मूलक बाह्य आचरणों से ही प्रधानतया संबंध रखती है, इस प्रकार यह देखा गया कि भक्त बनने के लिये सबसे पहली सीढ़ी यह है कि साधक अपने आचरण द्वारा शास्त्रीय नियमों का पालन करें।

सच्चे हृदय से इन नियमों का पालन क्रमशः मनुष्य के मन को सच्ची भक्ति और ले जाती है, यद्यपि प्रारम्भिक अवस्थाओं में भक्ति का अंश बहुत क्षीण रूप में रह सकता है, श्री शंकराचार्य स्वयं कहते हैं कि सच्ची भक्ति का उदय तो भगवतकृपा से ही होता है। हमारा कर्तव्य इतना ही है कि भगवान के बनाये नियमों का पालन करें।
इस प्रकार स्थूल भक्ति का अभ्यास करते करते श्री कृष्णकथा के अनुग्रह से सूक्ष्म भक्ति का उदय होता है जिसके परिणाम स्वरूप श्री हरि उसके मन में आ विराजते हैं।"

श्री शंकराचार्य ने इसके अनन्तर आन्तरिक अथवा मानसिक भक्ति के विभिन्न स्तरों कभी विस्तार से वर्णन किया है -
स्मृति और पुराणों के सद वाक्यों द्वारा सुनी हुई भगवान की मूर्ति के मानसपूजन का यों से अद्रोह और इससे उत्पन्न हुई समस्त प्राणियों पर दया प्राब्धानुसार जो कुछ भी अन्यास एकान्त सेवन की परायणता, सत्य समस्त में श्री कृष्ण को व्यापक जानना, सम्पूर्ण हो, उसी से संतोष, स्त्री और पुत्र आदि में ममता शून्यता, अहंकार और क्रोध से रहित मृदु भाषण करना, प्रसन्न चित्त रहना, अपनी निन्दा अथवा स्तुति में समान भाव

रखना, सुख-दुःख और शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहन करना, आपत्ति से भय न करना, निद्रा आपर और विहारादि को आदर न देना, अनासक्त रहना, व्यर्थ वार्तालाप को अवकाश न देना श्रीकृष्ण स्मरण में शाश्वत शान्ति का अनुभव करना 2 ये हैं वे मानसिक गुण जिन्हें हवपूर्वक नहीं प्राप्त किया जा सकता, ये तो भगवान के बनाये हुए नियमों का इस सरल तथा अन्तर विश्वास के साथ दृढ़तापूर्वक अनुगमन करने से प्राप्त होते है कि भगवान हमारे सुहृद तथा अहेतुक कल्याण करने वाले हैं।

यद्यपि शंकराचार्य के मतानुसार आत्मज्ञान के उदय होने पर, जैसे प्रकाश पड़ने पर स्थाणु में दिखा हुआ चोर अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार जीव शिव के साथ मिल जाता है तथा उसका व्यष्टि भाव जो कल्पित था, नष्ट हो जाता है फिर भी जब तक इस प्रकार पूर्ण रूपेण एकता न हो जाय तब तक वे भगवान एवं जीव की पृथक सत्ता मानते हैं, जीव और शिव जब मिलकर एक हो जाते हैं, उस अवस्था की भक्ति श्री शंकराचार्य के मत से साधक की भक्ति से कुछ भिन्न होती है, शिव सर्वदा प्रभु और पूर्ण है, एवं जीव शिव का केवल एक सेवक अंश है।

मधुसूदन सरस्वती चितवृति की तीन भूमिकाएं स्वीकार करते - (1) तस्यैवाहम्, (2) ममैवासी, (3) सस्वाहम। 73

पहली भूमिका वह है जहां भक्त मानता है कि वह प्रभु का सेवक मात्र है, तथा प्रभु आज्ञा पालन मात्र ही उसका कर्तव्य है, यहां भक्त प्रभु से कोई संबंध जोड़ने का दावा नहीं कर सकता।

इसके पश्चात् श्री शंकराचार्य उस व्यक्ति की भक्ति का वर्णन करते हैं जिसने भगवान की सत्ता का उनके साथ एकात्मता का अनुभव करना आरम्भ कर दिया है। यथा कोई भगवत संबंधी गीत का गान करे अथवा बांसुरी बजाये तो आनन्द के आविर्भाव से एक साथ ही कई सात्विक भावों का उद्रोक हो जाये, उस शब्द में फंसा हुआ मन परमात्म सुख का अनुभव करता है और जब चित्त स्थिर हो जाता है तब उसकी अवस्था मतवाले हाथी के समान हो जाती है।"

धकाधिक घनिष्ठ हो जाता है, तब वह स्वामी के प्रति भी एक प्रकार की आसक्ति एवं अधिकार की भावना को व्यक्त करने लगता है और यह अनुभव करने लगता है कि स्वामी जब कोई सेवक अपनी दीर्घकालीन सतत् एवं भक्ति पूर्ण सेवा द्वारा स्वामी से सीके स्वामी है, वह स्वामी के आदेशों की रूप रेखा के निर्माण का उत्तरदायित्व भीअपने ऊपर ले लेता है, वह उनके साथ स्वतंत्रता बरतने लगता है और स्वामी भी इसके लिए

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

छूट दे देता है, कभी कभी तो वह स्वामी की यह आदेश देता देखा जाता है कि उन्हें उसे कौनसी आज्ञा देनी चाहिए।

भक्त के इसी रूप में श्री शंकराचार्य ने भगवती लक्ष्मी को राजी ही नहीं किया वरन् कर दिया एक दरिद्र गृहस्थ के घर पर स्वर्णीमलक फलों के रूप में अपनी दया की के लिये ममैवासो इसी भूमिका का वाचक है।

भक्ति की अन्तिम भूमिका का वर्णन स एवाहम' वही मैं हूँ इस वाक्य में हुआ है। जीव एवं शिव का पूर्ण एकीकरण हो गया है। इस अवस्था में उदय होने वाले आनन्द का शब्दों द्वारा वर्णन संभव नहीं है। यह एक आन्तरिक अनुभूति है, जो स्वसंवेद्य है, इस प्रकार का आनन्द ही सबसे उच्च कोटि की भक्ति है, इस प्रकार दृढ़निष्ठ तत्त्ववेता सर्वत्र आत्मदर्शन करता है, उसे मैं मेरा" और "तू-तेरा" कहीं नहीं दीखता। वह सर्वत्र आत्मदर्शन करता है, अतएव भगवान शंकराचार्य ने देवी, विष्णु गंगा आदि के सुन्दर स्तोत्रो ई एकात्म प्रत्यय निष्ठा का ही गान किया है। वे आत्मातिरिक्त किसी भी देवता अथवा बराचर पदार्थों में प्रत्यय नहीं करते थे। सर्वत्र आत्मदर्शन ही उनकी एकात्म निष्ठा थी, यही भक्ति का परम प्रयोजन है इसी से जीवन की सार्थकता है।

इस प्रकार श्री शंकराचार्य जी की भक्ति के स्वरूप का सार एक है। उनका मत है कि परम ब्रह्म या निर्गुण ब्रह्म में अभिन्नता है।

श्री शंकराचार्य जी ने केवल अनन्त, अनादि तथा नाम रूप और उपाधियों से अपरिच्छिन्न निर्गुण ब्रह्म की धारणा का वर्णन करने वाले भाष्य तथा प्रकरण ग्रन्थ ही नहीं दिये हैं उन्होंने नाम रूप तथा सविशेष सगुण ब्रह्म की लीला से संबंधित अनेक कविताओं की रचना की है।

शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है कि. 1
"परमात्मा का उपासक बाह्य इन्द्रियों के व्यापार से उपरत हुआ तथा दान्त अर्थात् द्रियादि व्यापारों से परान्मुख होकर एकाग्रता के साथ आत्मा में परमेश्वर का चिंतन नाकरण की तृष्णाओं से निवृत लोकादि त्रिविध एषणाओं से विनिर्मुक्त द्वन्द्व सहिष्णु करता है (75

शंकराचार्य कठोपनिषद में कहते है कि -"अति सूक्ष्म दस्तर दुर्गम होने के कारण यह अक्षरात्मा गति देहाभिमानियों से दुःख पूर्वक ही प्राप्त की जाती है। इसलिये दाहाभिमानियों के लिये अन्तर्मुखी वृति के अभाव में सगुण उपासना ही सगुण और श्रेष्ठ है उनके लिये यही साधन श्रेष्ठ है, परन्तु जो देहाभिमान से मुक्त है उनके लिये निर्गुण उपासना ही साक्षात सद्योमुक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

इस संदर्भ में अद्वैत वेदान्त के मर्मज्ञ मधुसुदन सरस्वती का सम्यक उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि शंकर के अनुयायियों में मधुसुदन सरस्वती ने अद्वैत वेदान्त भक्ति के पावन प्रवाह का खोज निकाला।

शंकर के अद्वैत वेदान्त के परवर्ती परम्परा में अनेक आचार्य ऐसे भी हुए जिन्होंने अद्वैत की ज्ञानमयी धारा में भक्ति के प्रवाह को भी देखा। यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि शंकर दर्शन में भक्ति की शीतल धारा को न केवल स्थान मिला है वरन् ज्ञान (सहज ज्ञान) की आड़ में मात्र शुष्क बौद्धिक ज्ञान के ताप से उत्पन्न अहं को न पनपने देने के लिए परा भक्ति को सहज ज्ञान के समान ही अत्यंत उपयोगी और अपरिहार्य माना गया है। इसलिये परवर्ती आचार्यों में भक्ति के प्रति गहन रूझान होना स्वाभाविक ही है।

अद्वैतवादी परम्परा में श्री मधुसुदन सरस्वती जी का सर्वोच्च स्थान है, उन्होंने 'अद्वैत सिद्धि, सिद्धान्त बिन्दु' आदि प्रौढ़ ग्रन्थों में शंकर अद्वैत की प्रकृष्टतम् युक्तियों से स्थापना की है और बड़े सौभाग्य की बात है कि आपने जहां एक ओर अद्वैतवादी दर्शन की सूक्ष्मतम व्याख्या प्रस्तुत की है वहीं उन्होंने क्रियात्मक रूप से भक्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए ज्ञान तथा भक्ति का परम समन्वय प्रस्तुत किया है। श्री सरस्वती जी के मत में भक्ति को परम पुरुषार्थ माना गया है। उन्होंने प्रतिपादन किया है कि साधन ज्ञान द्वारा वैराग्य की पृष्टि होकर परम तत्व में पूर्ण निष्ठा उपलब्ध होती है।

अद्वैतवादी कुछ आचार्य या तो भक्ति को मोक्ष रूप साध्य के लिये अस्वीकार करते है अथवा उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्म विद्या के अन्तर्गत उसका अन्तर्भाव करते हैं। उनका कथन है कि -
उस परब्रह्म परमात्मा को ब्राह्मण लोग वेदों के पारायण ये, यज्ञो से, दान से, नष्ट न होने वाली तपश्चर्चा से जानने की इच्छा करते हैं।" सर्वापक्षाधिकरण में भी ब्रह्म विद्या के बंध में इसी प्रकार का निर्णय किया गया है। ऐसी स्थिति में ब्रह्म विद्या से अतिरिक्त भक्ति रूप को पुरुषार्थ नहीं माना जा सकता है। इस शंका का उत्तर देते हुए मधुसूदन जीने प्रतिपादित किया है कि भक्ति और ब्रह्म विद्या के स्वरूप साधन फल और अधिकारी अलग-अलग प्रसिद्ध है। इन दोनों में अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न विलक्षणतायें हैं।

इस प्रकार भक्ति को ब्रह्म विद्या के अन्तर्भूत करने वाले विचारकों का खंडन करके मधुसुदन जी ने भक्ति की स्वतंत्र रूप से स्थापना की। आचार्य मधुसुदन जी के मत में भक्ति को परम पुरुषार्थ रूप स्वीकार किया है।
उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि शंकर के अद्वैत वेदान्त में भक्ति को ज्ञान की चरम परिणति सिद्ध करने का सफल प्रयास है। यद्यपि ये दृष्टि भक्ति मर्मज्ञ मधुसूदन सरस्वती को मिली थी फिर भी शंकर वेदान्त के अनेकानेक मर्मज्ञ विद्वान शंकर द्वारा ज्ञान-कर्म-समुच्चय का विरोध किए जाने के कारण शंकर को ज्ञानवादी मानकर संतुष्ट हो जाते है और ये भूल जाते है कि शंकर गीता में वर्णित चार प्रकार के भक्तों में वह ज्ञानी भक्त है, जो परमात्मा का साक्षात रूप ही है। उनके अद्वैत वेदान्त में स्वीकार करना और उनके दर्शन में भक्ति तत्व को लुप्त मानना अनुभूति हीनता का सहजज्ञान या अन्तरानुभूति के तथ्य को मात्र ज्ञान की अवस्था मानकर उन्हें परमभक्त न परिचायक है।

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

दरन एकरस रूप में ही है। शंकर में परमज्ञानी और परमभक्त दोनों का तादात्म्य रूप में शंकर के अद्वैत वेदान्त में ज्ञान और भक्ति की उपस्थिति समानान्तर रूप से ही नहीं अवतरण हुआ है। इस दृष्टि से सत् साक्षात्कार के लिए शंकर द्वारा बताये गये दो मार्गों ज्ञान और भक्ति तथा इस सम्बन्ध में उठाये गये विवाद को निरस्त करते हुए शंकराचार्य ने ये प्रतिपादित किया है कि ज्ञान और भक्ति दो पृथक तत्व नहीं है, वरन एक ही स्थिति के दो नाम है। उनका ये योगदान भावी दार्शनिक एवं धार्मिक चितेरों के लिए एक चेतावनी है और भावी पीढ़ी के लिए एक दिशा बोध है |

© RRIJM 2015, All Rights Reserved